# उन्मन

दिनेशनन्दिनी चोरड्या

प्रकाशक

साहित्य भवन लिमिटेड, प्रयाग

प्रकाशक :
साहित्य भवन लिमिटेड,
प्रयाग।

मुद्रक :
श्री गिरिजा प्रसाद श्रीवास्तव,
हिन्दी साहित्य प्रेस, प्रयाग।



श्रीमती हरक कुँवर

## समर्पण

मेरी मां को

जिसको मैंने जितना ही निकट से देखा

उतना ही मधुर और महान पाया।

'दिनेश'

## प्रकाशकीय—

दिनेशनन्दिनी जी से हिन्दी-गद्य-काव्य-जगत् पूर्णतया परिचित है। उनकी 'शबनम' ने लोक-प्रिय ही नहीं बनाया प्रत्युत आज के उलझे हुए मस्तिष्कों और चंचल हृदयों पर अपनी अमिट छाप भी छोड़ दी !

प्रस्तुत संग्रह उनका नवीन संग्रह है। इसके साहित्य के अन्तर्दर्शन की व्याख्या तो करेंगे आलोचक, मैं तो इतना ही कह सकता हूँ अब वे अपनी कला में पहिले से अधिक दक्षता और अधिकार प्राप्त कर चुकी हैं। यों तो उनके पास गहन अनुभूति है ही, भाषा भी व्यापक, ओजपूर्ण और प्रवाह-युक्त है। हाँ, कहने को भी कुछ अपना अवश्य ही है।

'उनमन' को हिन्दी के सम्मुख रखते हुये हमें प्रसन्नता है। अधिक पाठक जानें—समझें, चीज़ सामने है।

पुरुषोत्तमदास टंडन,
मंत्री,
साहित्य भवन लि०, प्रयाग

१

प्रेम ! यदि तेरे कान होते और तू मेरी आर्त-वाणी को सुन सकता, यदि तेरे आँख होती और तू मेरे गुलाब-से सौन्दर्य को देख सकता, यदि तेरे हृदय होता और तू मेरे हृदय के उतार-चढ़ाव तथा उसमें नृत्य करनेवाली अनन्त की लहरें, समय की गौधूलि का प्रकाश, संसार और जीवन का ज्वार, शोक और सुख की यौवन-सिन्धु पर समान छाई हुई हरित काई, बेहोश भावनाओं के गुप्त द्रव-बिन्दु, जीवन और मृत्यु, मानव-मन की दुपहरी और मध्य रात्रि, आत्म-गौरव का प्रभाती-प्रकाश, और सन्ध्या की सुगन्धित धूरि का तुझे अनुभव होता—वह दिव्य अनुभूति हमें एक कर देने में सहायक होती । प्रेम ! यदि तेरे कान होते !!

२

मृत श्वान देखकर एक ने कहा, "हमारे मन्दिर के प्रवेश-द्वार के सुरभित वातावरण को यह अपनी दुर्गन्ध से गंदा कर रहा है।"

दूसरे ने नाक-भौं सिकोड़ते हुए कहा, "इसके झुर्रीदार चमड़े पर गाढ़े रक्त के क़तरे जम गये हैं।"

तीसरे ने कहा, "इसकी गर्दन पर वही रस्सी लटक रही है जिससे चोर को फाँसी के तख़्ते पर लटकाया गया था।"

चौथे ने घृणा के साथ मरे कुत्ते पर डंडे का प्रहार किया।

संझा के झुटपुटे में मरियम का पुत्र चीथड़ों में आराधना के लिए आया।

"क्या उसके दाँत बहुमूल्य मोतियों से सुन्दर नहीं हैं?" —उसने कहा और झुककर कुत्ते के ओठ चूम लिये।

प्रहरी ! रजनी कितनी शेष है ?

महाशिव-रात्रि के गहन अन्धकार में किसी की मुक्त वाणी सहसा गूञ्ज उठी !

शिशु के कोमल चुम्बन-सी, मृत्यु के शीतल स्पर्श-सी किसी अज्ञात की पदूध्वनि सोई धरणी के वक्ष पर सुनाई पड़ी !

किन्तु, निद्रा ने सतत् जगनेवाले नक्षत्रों को भी अपने कृष्णाञ्चल में लपेट लिया था।

और संतरी खर्राटे भर रहा था !

केवल दीन दुखियों, त्रिताप ताड़ितों, पदाक्रान्तों की कुटियों से रोने-झींकने और कराहने का करुण क्रन्दन ही स्तवन और स्तोत्र पाठ था।

अदृश्य चरणों की आहट निकटतम आती जा रही थी,

पवन वृक्षों से वीणा, भेरी और मृदंग के सुर निकाल रहा था। शिवालय में जलनेवाले घृत-दीप के क्षीण प्रकाश में वेदोच्चार करनेवाला पुजारी भी मध्य शर्वरी की अर्चना समाप्त कर काश्मीरी अगर की महक से मदहोश हो समाधिस्थ हो गया था !

तब——अमल-धवल कैलाश से एक अपूर्व दिव्य-कर्पूर-गौर मूर्ति भूतल पर आविर्भूत हुई, और उसके भाल पर शोभायमान अर्ध-चन्द्र ने दिशाओं को ज्योत्स्ना-प्लावित कर दिया !

चिरमृत्यु और मोह के हिंडोले में झूलते हुए मानव को उसने देखा और कहा—

"मैं रात को आता हूँ।"

उत्तर में केवल हवा सनसनाई !

नर-शोणित-सिञ्चित पृथ्वी-परिक्रमा कर अर्ध-नारीश्वर धर्म-मूर्ति नन्दी पर बैठ शिवलोक गये, न किसी ने उनकी आवभगत की, न पूजा प्रतिष्ठा।

सप्ताश्वरूढ़ सूर्य्य के सुनहले प्रकाश में आँख मलते हुए उठे तब—उन्हें ज्ञात हुआ

उनका जागरण असफल रहा !

पतित-पावन भगवान भूतनाथ जब सर्व मंगल-मांगल्या शिवा के साथ अनुग्रह करने आये तब वे घोर तमिस्रा की गोद में बेखबर सोये थे !

प्रहरी ! रजनी कितनी शेष है ?

तेजः पुञ्ज प्रकाश शनैः शनैः आ रहा है, फिर भी मायाविनी निशा अपना घूँघट नहीं उलटती।

प्रहरी ! रजनी कितनी शेष है ?

४

किसी से पूछ देख, वे कब आयेंगे ?

चाँद-चपक में भरी हुई वारुणी को किसी असंतुष्ट ग्रह ने चलते-चलते बादलों की सप्त-रंगी पहाड़ियों पर उलट दी है,

सागर और पृथ्वी यौवन-द्वीप की अनन्त ऊष्णता में समा रहे हैं !

सहायक-सरिता उनके उर में बहती है

अथवा—मेरे हृदय में कौन जाने ?

सुदूर में जलनेवाले मन्द प्रदीप की गन्ध से जीवन-पतिङ्गा अन्धेरे की ओर ललक रहा है !

किसी से पूछ देख, वे कब आयेंगे ?

तापों की साकार मूर्ति,
शक्ति और करुणा का अद्भुत समन्वय,
जब हृदय-दौर्बल्य करता है मानव को त्रस्त
तो वह देखता है सभक्ति तेरी ओर

और पुनः पा लेता है अपनी खोई शांति बिना किसी भगीरथ प्रयत्न !

जब घेर लेता है जीवन-मार्ग में हमें चतुर्दिक अंधकार, और पथ-भ्रष्ट होकर पाप-रजनी में भूल जाते अपना निर्दिष्ट पथ तब प्रेम की पुनीत किरण तेरे दयार्द्र नयनों से निकलकर देती सूचना हमें धर्म-सूर्य के अभ्युदय की निकट भविष्य में !

तेरी नस-नस में होता है प्रवाहित
अमर प्रेम का ज्वार और
वह फूंक देता है मानव के रोम-रोम में
निष्काम कर्म का अमिट संदेश !

मृत्योन्मिलित मानवता की रजनी पर तू उदित हुआ है मृत्युंजय के भाल-सा चंद्र पराधीनता के अंधकार को तू अपने आत्मबल से कर देगा सदा के लिए निःशेष ।

६

सुहाग और अश्रु की रात को, यौवन के रंगीन उजाले में, मधुर-गरल प्रणय के घनी हरित छायावाले पुराने वृक्ष की टहनी पर गुप्त स्मृतियों का एक नन्हा सा नीड़ बनाया है। उस आशियाने की रखवाली के लिए मैंने जुगनु-प्रहरियों को नियुक्त किया है। संसार से अघाकर तुम अन्तर के स्वर्गोद्यान में उठ आओ तो सीधे वहीं पहुँच कर विश्रान्ति लेना, मेरे प्रेम-विहङ्ग !!

७

हृदय के पश्चिमी कोण से निकला हुआ मेरा प्रेम समुद्र के स्थिर रँगभरे कुहरे पर, धरणी के शुष्क अधरों पर शोकस्तब्ध वाणी की तरह फिरता है। आकार, आँख और घोंसले रहित वह उस अलभ्य की खोज करता है, पुराने दुःख-सा लहरों के प्रकाश पर रोता है, और कभी ऐसी आह भरता है जैसे रात के ज्वार ने तारों के किनारे अपना सर धुन लिया हो।

हृदय के पश्चिमी कोण से निकला हुआ मेरा प्रेम उस अलभ्य की खोज में भटकता है।

८

जब अजाने ही तू मुझे अपने पार्श्व में ले लेता है, तेरी हृद्-धड़कन में मैं सौन्दर्य और संगीत का ताना-बाना बुननेवाली चिर-युवा प्रकृति को देख दग्ध हो जाती हूँ।

जीवन की अमर लहर तेरी स्निग्धता मुझे देती है पर— मैं उसका अह्लाद महसूस करूँ उसके पहले ही भाग्य का काला कर अपना निर्माल्य समझ कर मेरे सुख को ले लेता है। अजाने मुझे निकट बुलाया पर बुद्धि के प्रकाश में तू ही बुझ गया।

९

खोए हुए पर्वतों में कोई छिपी हुई मनोरम मृत्यु की घाटी नहीं है, और न मानव पद-चिह्न-रहित कोई पवित्र किनारा ही जहाँ बैठकर मैं तारों का गुप-चुप होनेवाला प्रेमालाप देख सकती, सोने के पूर्व आकाँक्षा के चिराग़ को गुलकर उनकी श्वेत सभा में होनेवाले मानव कर्मानुसार उनके भाग्य का निर्णय सुन सकती——समय की धूरि से अपना रूप धुँधला कर एक सूत्र में पोये हुए मनकों की भाँति निरन्तर फिरनेवाले क्रूर ग्रहों से एक बार मंगल मिलन का महा आशीर्वाद माँग लेती !

१०

समुद्र और धरणी का परिधान पहन विश्व-सुन्दरी गगन की मुग्ध शैया पर तारों का तकिया लगाकर सोती है। मराली के कोमल बच्चों के समान बादल उसकी स्वप्निल अलकों से अठखेलियाँ करता है और प्यार के चुम्बन शान्ति के श्वेत कपोतों में परिणित हो किसी हरित प्रदेश के प्रशान्त प्राँगण में उड़ विश्रान्ति लेते हैं और, सुरसरी ओज भरी बहाते हैं।

## ११

मैं क्या कहूँ ? जब मेरी मौन ही सब कुछ कह देती है । मिलन के पहले ही हो जानेवाले विच्छेद का दुःख बादलों के बिछलते हुए हृदय को छूता है और वे बिसूर-बिसूर कर घुल जाते हैं ।

तरल वियोग की यही भावना जब प्राँजल्य पहाड़ियों तक पहुँच पाती है तब उनका रूप काले कुहासे में ढक जाता है, जलता हुआ सूर्य्य आँसु के पाले से शीतल हो जाता है और आत्मा की कृति उसका क्रन्दन उसी पर छाकर उसे परिवर्तित कर मौन कर देता है ।

कोविद कृष्ण,

श्री राधा चित्त-विहारिणी, महानन्दा तथा भुवन मोहिनी वंशियों के रव बन्द कर दे। तेरी सरला मुरली भी न बजा मदन हुँकृत, 'बधुर' और षड़ंध्र वेणुओं को भी मुख से न लगा। मूक्तिापिका काकली को भी विश्राम दे जिसको श्रवण कर कोकिला भी मूक हो जाती है!

कवीश्वर, आज अग्नि वीणा के तार छेड़ और क्रांति के अनल-शिखाओं से लिपटे रक्तिम गीत उचार,

जिन्हें सुन कर धूर्जटी की अखण्ड समाधि भङ्ग हो जाय नर-राज प्रलय का डमरू बजायें और त्रिकालाग्नि रुद्र के तृतीय नेत्र से वह प्रलयंकारी महानाश की ज्वाला प्रज्वलित हो जिसकी धांय धांय करती लपटों में हिंसा, शोषण, और आततायियों के अत्याचार जिसने मानव को त्रस्त कर दिया है, संसार को जीवित स्मशान बना दिया है, जहाँ कोटि चितायें सुलगती हैं, कँकाल भस्म होते हैं धकधक जल जायँ !!

और उस भस्म में फिर से मानवता का पूर्ण पुष्प खिल उठे।

१३

बृज में खिली पलास,

मलयानिल के गंधोन्द्धवास ने धरणीतल पर हरित आग सुलगा दी और श्री राधाजू के विरह-विह्वल मन में मधुर स्मृतियों की दारुण ज्वाला जिसे चंदन, कर्पूर और कदली भी शीतल करने में असमर्थ थे। वेत्र निकुञ्ज में शीतल शिला खण्ड पर बैठी हरि प्रिया कृष्णा के मकरंद भरे राते-राते गुलाब से अधरों की स्मृति में मातल हो उठीं! कलिन्दजा अंधकार की आत्मा का भेदन करती हुई तारिकाओं से सहसा पूछ बैठी "हाय, आज श्री वृन्दावन विनोदिनी रासेश्वरी को माधव ढिग कौन ले जाये ?

बृज में खिली पलास लाल लाल!

१४

तेरे प्रेम की अभिव्यक्ति मौन है और मेरी मुखर ! अतः तू वह रहस्य है जिसमें जिज्ञासु चरम-सीमा की खोज करते हैं ! पर मैं, खुली हुई कोमल, दुखान्त-नाटिका हूँ जिसे पढ़कर पाठक की अश्रु-अन्धी आँखें भविष्य नहीं केवल अतीत का धुँधला पृष्ठ स्पष्ट करती हैं ! तू आकर्षण-आक्रान्त चिर प्रश्न है और

मैं गहन उदासी के बाद उत्पन्न होनेवाला चिर विराम !

तेरी अभिव्यक्ति मौन है और मेरी मुखर !!

१५

सरिता और सागर के संगम पर यदि तू मेरे साथ होता—दुःख और सुख के अधर-सम्पुट पर बैठ कर यदि तू मेरे लिये गाता,

जीवन और मरण की श्याम-श्वेत सन्धि-बेला में यदि तू सहसा आ जाता तो प्यार के मोतियों का अभिषेक कर तेरा रिक्त-चषक भर देती ! तब—

नील घटा छाये नैराश्य के स्थिर वक्ष से छन कर वह शान्ति निकलती जो ऋषि-मुनियों को मधुमति भूमिका में मिलती है !!

१६

मृत्यु और प्रेम यौवन की अन्धी टहनी पर पुष्प-नक्षत्र की उजाली रात में खिलनेवाले अद्भुत पुष्प हैं।

जो सदैव शरद-तारिकाओं के हृदय से झड़नेवाली शबनम की अलभ्य बूँदों से भीगे रहते हैं।

एक दिन मानव-उर के खोये हुए स्वर्गोद्यान से प्रवाहित होनेवाले मुक्त-पवन के उष्ण-शीतल चुम्बन, वसन्त का बाना पहन कर आते हैं,

डाल सिहरती है,
कम्पन-भरे फूल—

अभिन्न हो धूरि के अधरों पर चू पड़ते हैं॥

मृत्यु और प्रेम यौवन की अन्धी टहनी पर विकसित होने वाले पुष्प हैं॥

## १७

जगत का राज़ खुलने पर वह रंगहीन इन्द्र-धनुष की तरह आश्चर्य-विहीन जड़ वस्तु-सा ज्ञात होगा ।

बिना सुवर्ण के सूर्य्य अथवा कोमल धूप के बिना दुपहरी की कल्पना कर, अरण्यावनि पर आँख होते हुए भी अन्धी की तरह टहलनेवाली उसकी निरावरण आत्मा को लाल टेसू के पुष्पों से ढक दे ।

खोए हुए द्वीप पर मंडराते हुए मेघों की शून्य दृष्टि में छन्द की रचना कर, उनकी ऊष्ण आहें तुझ तक पहुँचेंगी तब ही जगत का राज़ खुल सकेगा और तब जीवन में आश्चर्य न होगा ?

## १८

मेरे मनाने का विधान ही उसके रूठ जाने का कारण हुआ ।

वर्षों तक जिस रहस्य को अपने से भी गुप्त रखा वह आज 'सत्य' बनकर अचानक उसपर प्रकट हो गया और अब वह मेरी छाया को भी धूप का साया समझता है ।

अरुण-स्नेह मेरे सुन्दर सपनों पर निशा की श्यामता छा गई और वह अपने 'प्यार' को नन्हीं-सी भूल समझ मुझसे रूठ गया ।।

१६

जीवन और मृत्यु के बीच गुजरनेवाली आशिक-घड़ियों का शृंगार उन अध-खिले प्यार के प्रसूनों से कर जो प्रभात में खिल अंधेरी कल्पना के एकान्त गहन वन के अजाने पथ पर मुर्झा जाते हैं।

जीवन और मृत्यु के बीच की घड़ियाँ—समुद्र के नीलम कूल पर बैठ, सुदूर से दिखनेवाली तूफ़ानों से उलझी स्वर्ण-नौका में बैठे प्रिय की प्रतीक्षा में वेग से उस ओर उड़नेवाली नन्हीं लहरियों के स्पन्दन पर दीप संजोते-संजोते काट दे।

जीवन और मृत्यु की घड़ियों का शृंगार—

ज्वालामुखी के समान हृदय से विकीर्ण हुए प्रार्थना के आर्द्र उद्‌गारों से कर !!

२०

मेरी निद्रा से अठखेलियाँ न कर, पीतम, मणि-प्रदीप को रत्नों का चूर्ण फेंक कर धुंधला कर दे, चंद्रिका मेघों के आवरण में छिपा ले, अछूती लज्जा को आँखों में सुला प्रेम की अभिव्यक्ति का प्रौढ़ विनिमय होने दे—क्योंकि चेतना के प्रदेश में तुझे न पाकर जन्म जन्मान्तर की क्षण भर के लिए भूल-व्यथा मुझे फिर से आघेरेगी और जागृति का विषम ज्वर मुझे सतत संतप्त और दग्ध करेगा ॥

मेरी निद्रा से अठखेलियाँ न कर, प्यारे ॥

२१

तू 'सत्य' और झूठ से परे है, पाप-पुन्य की परिधि में नहीं आता, काल की सीमा से नहीं बंधता। तेरा सौन्दर्य नित्य और यौवन जरा की आँखों से ओझल।

मुझ निरा-तिरन मिटनेवाली से मिलकर अनित्य नहीं बनना चाहता पर, जीवन का घूंट को गले में बांध मैं तुझे पाने के लिए प्रलय की अन्तिम घड़ी तक प्रयत्न-शील रहूँगी ॥

२२

कर में कर लिये श्याम और मैं तारों के मण्डप के नीचे यमुना-तट पर विचर रहे थे।

मधुर शब्दों में, कमल-नयन मेरे रूप की स्तुति कर रहे थे,

और मैं तन्मय होकर उसे सुन रही थी।

शीतल मंद सुगंधित बयार कुञ्जन में विचर रही थी;

किन्तु मधु मास की सुरभित श्वास से भी मधुर वह चुम्बन था जो कन्हैया ने मेरे अधर-सम्पुट पर बरजोरी अंकित किया !!

२३

कलुषों की कालिमा ने मेरे सौन्दर्य को नख-शिख तक ढक लिया, फिर भी पुराण-पंथियों की तरह मेरे पापों के परिक्षालन के लिए प्रायश्चित की व्यवस्था नहीं की, क्योंकि तुमने पापांधकार से तुमुल करनेवाले उस प्रदीप का क्षीण आलोक देखा जो मेरे उर में टिमटिमा रहा था।

किन्तु मैं तुम्हारे वदान्य का भार सहने में असमर्थ थी, और मैंने अपना जीवन-पथ विवेक और तुम्हारी सुरुचि के प्रतिकूल ही निर्दिष्ट किया॥

२४

रावण द्वारा हरी गई सीता ने आकाश-मार्ग से गमन करते हुए वियोगी राम को पथ जानने के लिए अपने आभूषण बिखेरे थे। मैं भी इस गहन-वन में साधन-पथ के अमर पथिकों के लिए ये गीत के गहने बिखेर रही हूँ, जिससे वे मेरे चले हुए मार्ग पर चलकर तुझ तक पहुँच जायँ॥

शत्रु और मित्र तुम्हारे हँसोड़े और विनोद प्रिय स्वभाव के कारण तुम्हें न समझ सके;

तुम्हारे स्मित मुख-मण्डल की आभा में उन्हें उस वेदना के ज्वालामुखी का ज़रा भी आभास न मिला जो तुम्हारे हृदय के अंततम प्रदेश में धधकता था;

रुद्र-रूपिणी विधना के वज्राघात, स्थित-प्रतिज्ञ हो, जिस धैर्य से आज तक तुम सहते आये हो, उसने मुझे सदा के लिए तुम्हारी बना लिया।

तुम्हारे दृगों की अश्रुधारा तो तुम्हारे हृदय की भूखी ज्वाला निरंतर शोषण करती रही और तुम अपने दुःखों पर अश्रुपात न कर सके, पर—

मेरी पीड़ित आत्मा गगन-गुञ्जानेवाला हाहाकार कर तुम्हारे लिए अनायास रो पड़ी ॥

२६

मधुश्याम रचो न रास !

मुरली-रव सुनकर गृह-काज छोड़ आई हूँ !

चैत की चन्द्रिका छिटक रही है, मल्लिका महक रही है, आई मैं तुम सङ्ग इस विजन वन में हास-विलास करने !

मन-मोहन मेरी आस पूरो न ?

ज्योत्सना-खचित कुञ्जों में मैं नाचूँगी और तुम गाओगे—मैं गाऊँगी और तुम नाचोगे

मधुश्याम ! रचो न रास !!

२७

अवनि पर आजतक कितने फूल खिले और मुर्झा गए ख़ाक से कितनी सूरतें उठीं और अपना सौन्दर्य क्षणभर बिखेर; फिर उसी में समा गईं; किन्तु—काल की पिछवाई पर मेरे लिए तो उसी अमर चितेरे का लिखा केवल एकही मुखड़ा चमक रहा है और वह है—प्रिय तुम्हारा चन्द्रानन जिसके जादू भरे नेत्रों में मैंने देखी है उस पार की निराली झाँकी !!!

श्याम तो मथुरा गयो री......

पलकों पर झूमते हुए, शबनम-गीले, रङ्गीन सपनों को तिलाञ्जलि देकर प्रेम की गहरी निद्रा से उठ–

श्याम तो मथुरा गयो री........!

हृदय, अनुराग की घोर-गम्भीर मृत्यु-मूर्छना को भंगकर चेतना के हिंडोले पर झूलता हुआ देख कि कालिन्दजा का प्रवाह कूलों के बीच थम गया है और श्रीहीन होगया है ।

वृन्दा-विपिन

श्याम जू तो मथुरा गयो री........!

२९

पिया की ऊँची अटारी पर चढ़कर मैं हरे वृक्ष और सुनील आसमान को देखती हूँ, जिसमें रवि, शशि, और दिव्य रत्नों के प्रदीप्त रंगवाले पक्षी पंख फैलाकर दूर-दूर तक उड़ते हैं, गाते हैं; उनका गीत प्रेम का होता है; किन्तु सान्ध्य समीर में उड़ते उड़ते जब वे थक जाते हैं तब अपने बाजू बन्द कर मेरी कल्पना के मनोरम उद्यान में उगनेवाले जीवन-तरु की शाखाओं में बुने हुए घोंसलों में घुस उसी आतुरता से निद्रा, मृत्यु और सुनहरे प्रभात की प्रतीक्षा करते हैं जिससे कि शहीद फाँसी के तख्ते पर झूलता है ॥

३०

महा-मिलन की बेला है, फिर हम और तुम क्यों न मिलें ?
अम्बर और अवनि मिल रहे हैं, यौवन और जरा मिल रहे हैं,
जीवन और मृत्यु मिल रहे हैं, प्रकृति और पुरुष मिल रहे हैं—
महा-मिलन की बेला है फिर हम और तुम क्यों न मिलें ?
जल और थल मिल रहे हैं, भय और प्रीति मिल रहे हैं,
पाप और 'पुन्य' मिल रहे हैं, गरल और सुधा मिल रहे हैं,
अधर से अधर मिल रहे हैं, फिर हम और तुम क्यों न मिलें ?

३१

निकट, सदैव निकटतर और साथ-साथ दो सरिताएँ बहें अपने अलग-अलग मार्ग से, प्रत्येक अपने उद्‌गम स्थल से अलग, जब तक कि पर्वत-द्वार भलीभाँति न खुल जाय, और फिर चट्टानें और चरागाह उन्हें अलग न करें—और वे—अपने विशुद्ध जलस्रोत मिलाकर पुष्पित-वनों और उपवनों में बहें !

ऐसे ही तुम्हारा और मेरा जीवन पवित्रता और शान्ति में एक दूसरे से मिलकर उतरे, बहे, और वह आत्मा का मौन मिलन कभी बन्द न हो—जब तक कि वह गम्भीर, अनन्त महा सागर हमें अपनी अनन्तता में न लीन कर ले !!

३२

कौन-सी शक्ति मुझे तेरी ओर खींचती है ? मानव मृत्यु की छाया से भयभीत होता है, पर तेरे ध्यान ने मुझे जीवन-मरण के ऊपर उठा दिया है।

तेरे प्रेम के लिए मैं जी-जी कर मरती हूँ। तेरी आग से मेरी आत्मा पिघलती है और वह तेरे सौन्दर्य को अधिक दीप्त करने के हेतु तुझमें मिल जाती है।

तुझसे अब दूर होना असम्भव है !

तूही मेरा धर्म और मुक्ति है। वेद वेदान्त नहीं, मैं तो तेरी आँखों को पढ़कर ही स्वर्ग का राज समझ लूँगी !!

३३

अपना हृदय-संगीत सुनने को बाध्य न कर, यदि यह अन्तिम और अन्यतम इच्छा भी पूरी हो गई तो लम्बे जीवन का निःशेष कैसे होगा ?

यही कामना विस्तृत-नभ के किसी कोने में छिप तेरा कौतुक देखती है——बरसी हुई आशा और सभों की बदलियों का पानी अपनी आँखों में भर संसार के धुँधले छाया-प्रकाश में तुझे देखती है, तेरे नूर के अनल से अपने परों को काला करती है और तब चन्दन की गीली लकड़ी की तरह निशि-दिन जल मानव-आकाश के रोम-रन्ध्रों में सौरभ भरती है।

"भाई मोहे कृष्ण-वासुकि ने डस लीनो री"

गम्भीर-गरल प्रविष्ट होकर, विद्युत वेग से मेरी नस-नस में संचरण कर रहा है, और मेरे नयनों के सुनील निलय में श्याम घटाएँ घिर आई हैं।

मेरा इन्दीवर-सा गोरा-गोरा गात नीलाम्बुज के रंग का हो गया है और मेरे नव कोंपलों से कोमल अधरों पर साँवरे के फन की फुफकार से नीली झाँई छाई है और उनका माधुर्य फेनिल हो उठा है।

मेरे रक्त-कमल और नवल-चन्द्र से द्युति वाले नख मृत्यु के प्रदेश में खिलनेवाले कृष्ण-कमल-से काले होगये हैं और—

मेरे वक्ष में विकसित शतदल कमल से झरती हुई स्वर्ग-मकरंद की मंदाकिनी कालिन्दजा-सी नीली हो गई है।

विषधर के विषम विष की मूक वेदना का भार असह्य है—

गोकुल में नंदरायजी का सुत एक प्रसिद्ध गारुडी है, मैया मोरी—उसे बुला, मंत्र और झाड़-फूँक द्वारा मेरा उपचार करा नहीं तो—मैं सुरपुर सिधारी।

"भाई मोहे सांवरे ने डस लीनो री!!"

३५

मधुर मौन के अदृश्य पंछियों के श्वेत पंखों के समान जब आसमान से हिम-गिरता है, ज्वार का शीतल हाथ मेरे मानस में छिपे हुए एक मात्र विचार को छूता है तब—अन्धकार से भी गहरी वेदना से आक्रान्त मेरा मन तेरे आतुर आलिङ्गन का अर्थ समझने तेरे निकट आता है !

जगने-सुप्त स्वप्नों की आँख मिचौनी से हृदय की परिवर्तित होनेवाली ऋतुएँ पल में श्वेत होती हैं तब—तेरे प्रेम-प्रवाह का अर्थ समझने तुझसे आत्म-सात करने के लिए मेरी आत्मा का रजत-दीप अपने आप ही जल उठता है।

३६

शैशव के भोले दिनों में मैंने एक आम्र वृक्ष लगाया और वह शनैः शनैः मेरे साथ बढ़ने लगा, किन्तु उसकी श्रीवृद्धि में पूरा युग लग गया।

उस खोये बालापन की एकमात्र स्मृति की सघन डालों पर बैठ कोकिला कूजती है, और मधुमास में उसकी मञ्जरियों की महक से सुवासित पवन क्लान्त-पथिकों के हृदय में एक अजीब गुदगुदी पैदा करता है, परन्तु—

किशोरावस्था में पदार्पण करते ही मेरे हृदयोद्यान में प्रेम का बिरवा उगा और सखीरी, वह तो मदारी के वृक्ष की भाँति एक दिन में ही पाताल तक अपनी जड़ जमा ऐसा विशाल बन गया कि उसका 'छतनार' आकाश को चूमने लगा॥

३७

उठना, उठना, और फिर सहसा ही डूब जाना—यह तो जीवन का कभी न सुलझनेवाला रहस्य है।

अनन्त ईश्वरीय ज्योति की तरह, सूर्य्य की नन्हीं रश्मि की तरह हँसता हुआ चिर-परिचित मानव-यात्री जिज्ञासा आँखों में भर संसार के नदी-नाले पार करता है—आकाश के नक्षत्रों का हिसाब लगाता है, दरारों में झाँकता सीकर और शिला-खण्डों से खेलता, टकराता नीचे उतरता है और तब—बच्चों की खुशी से घर का आँगन दीप्त हो उठता है।

बुलबुले की तरह उठना और फिर डूब जाना यही तो ........।

३८

कबतक तुम्हें दूर से देखूँ ?

कबतक तेरे गुञ्जन लेकर तेरे गीत गाऊँ, कबतक तेरा रूप पीकर यौवन के स्वप्न बेचूँ। श्लथ-बन्धन होकर अरविन्द पर ओस-कण के समान, काठ में अनल के समान कबतक तुझमें रह कर भी तुझमें न रहूँ, कबतक तुम्हें दूर से देखूँ।

३९

काई का पर्दा चीरकर जब मेरे निर्मल नयन-उदधि में तू अपना नूर निरखने लगता है तब—नभ के सांध्य-मेघ पीत वर्ण होते हुए सूर्य्य की अन्तिम किरणों को पीकर झूम उठते हैं।

कृष्ण-हरित परिधान पहने पहाड़ियों के हृदय से बहता हुआ निरन्तर सोता स्तब्ध सरिता की अर्ध-निद्रित लहरों में विफल सपनों का स्पन्दन भरता है और तेरी अम्बर-सी आँखों में अवनी जीवन की स्याही से सौन्दर्य का इतिहास लिखती है!!

४०

आकाश के जालीदार परदे को उठाकर रंग-बिरंगे फूल पल्लवों के झुरमुट से ढके हुए तेरे घर की सुन्दर परी-सी परछाई की ओर देखती हूँ जो सदैव मेरी पड़ोस में बहनेवाली स्वच्छ सरिता में पड़ती है, पानी में राह बनाकर खुले द्वार प्रवेश करने की चेष्टा करती हूँ; परन्तु—

जाने क्यों मीन के चंचल नयन मुझे वहीं बांध लेते हैं और हाथ-पैर पछाड़कर भी मैं तेरे देहली तक नहीं पहुँच पाती।

४१

सूर्य्यास्त की बेला करीब है, और दिन में जलनेवाले दीपक का स्नेह भी खुट चुका है। अभी पृथ्वी की बाहों पर विश्रान्ति की आशा लिए अन्धकार उतरेगा और अभिसार की काली आँखें सुरमे के सौन्दर्य से चमक उठेंगी तब—यौवन के क्षीण आलोक के सहारे वे आवेंगे। यहाँ तक पहुँचकर भी मुझे पहचान न पायेंगे, क्योंकि सूर्य्यास्त की बेला करीब है, और दिन में जलनेवाले दीपका का प्रकाश क्षीण हो चला है।

अर्ध सुप्तावस्था में मैं एक धुँधली वृन्दावन की गली में चली जा रही थी। निद्रा ने मेरे चेतना-चन्द्र को घेर लिया।

एक मन्दिर के द्वार पर मुझे एक बछड़ा दिखा। वह मुझे नींद-सी हरी घास के कोमल स्वप्न फूलों के गीत, और चिर नूतन वृन्दा की कहानियाँ सुनाने लगा—उसका विश्वास था कि वृन्दा गउएँ बिना कष्ट के गोलोक में सीधी चली जाती हैं—जहाँ सुरभित पुष्पों से भरे दूर-दूर तक फैले हुए चरागाह हैं—मन्दाकिनी में वे अपनी तृषा शान्त करती हैं और, कल्पतरुओं की छाँह में बैठकर जुगाली करती हैं !!

पास ही में मुझे एक चिर किशोर गोप दिखा जिसके 'रसाल'-से विशाल नयन थे, मुख में मुरली थी, उसके चहुँओर असंख्य गउएँ एकत्र होगईं।

उनकी मधुर ध्वनि और 'चराकों' की आहट से वातावरण भर गया—मैं देखकर मुग्ध हो गई

गहरी नींद ने मुझे गोलोक की अलभ्य झाँकी करादी !!

४३

वनस्थली के द्रुमदल के छिद्रों से निकला हुआ सुगन्धित अन्धकार जीवन के दिग्विमूढ़ स्वप्नों पर छा गया तब "साँकरी गैल" पर प्रियतम की प्रतीक्षा में लेटी हुई शुक्ल-वसना रजनी के रूप-विन्यास से अमर यौवन का सृजन हुआ ! भीगी, लजीली पलकों से चेतना का माधुर्य चू पड़ा और—'उद्दाम यौवन के उफ़ान पर रसीली कल्पना का जल-प्लावन हुआ जिसने कविता-सुरसरी का रूप ले विश्व की मरुभूमि को नन्दन-कानन में परिणत कर दिया !!

४४

यदि तुम निर्मम-विश्व की कटु आलोचना से बचना चाहते हो तो झींगुर बनकर मेरे मन्दिर में आना, मैं प्रकाश की प्रथम किरण बन तुममें छिप जाऊँगी ! फूलों में हास बनकर आना, मैं नयनों की रुचिर सुधा बन तुममें समा जाऊँगी ! आशा में ओज बनकर आना और मैं अपने यौवन-वन की माधुरी बन तुममें रम जाऊँगी !!

पक्षियों का कलरव सन्ध्या के सुनहरे-रुपहले रहस्यों का उद्घाटन कर रहा था,

बरसात की श्लथ-श्वास नीबू और नारङ्गी के फूलों से झकझोर थी,

श्यामल अन्धकार रङ्गीन व्यथा के अज्ञात स्वप्नों का भार लिए जगती की अनिमेष पलकों पर उतर रहा था, सौन्दर्य-पद्म श्री के अनन्य-प्रेमी, कवि की बुभुक्षा कोमल और तीव्र स्पष्ट और अस्पष्ट धीमे और जलद-स्वर में सहसा फूट पड़ी——

उसका गीत वाञ्छा और वेदना से ओत प्रोत था जिसे सुनकर अवनी आसमान, जल-थल सुलग उठे; निराशा का स्रोत उसके कण्ठ से प्रवाहित हो रहा था। वायु और वनस्थली, चाँद और तारे उसके साथ रो रहे थे।

अन्त में उसकी संगीत-लहरी नाद की आत्मा के पर्दों को चीरती हुई शुद्ध आह्लाद के शुभ्र गगन में उठी—

वह प्रेम का अभिनव सफल आह्वान था ॥

४६

संझा के गंगा-यमुनी प्रकाश में मृत्यु के द्वार पर एक विधुर पक्षी बिल्व के ठूंठ पर बैठ कर अपनी मृत प्रियतमा के बिछोह में हृदय को अश्रुओं में बहा रहा था—

उनपर अंगार बरस रही थी, और नीचे—अकूल, अथाह वैतरणी का गति हीन अनन्त प्रवाह लहरा रहा था !!

४७

उस दिन पीपल के पेड़ के नीचे बैठकर उन्होंने प्रेम की परिभाषा की। यौवन की बुझी हुई शमा को प्रवालों की ओट कर वह उनकी अनुभूतियाँ पढ़ती रही।

पवन के उच्छ्वास से पत्तियाँ काँप रही थीं,

जलराशि के नीले सौन्दर्य में नक्षत्र जाग उठे, ज्योत्सना की आँखों से निकले हुए नन्हें बादल के रंगीन टुकड़े क्षत-विक्षत आकांक्षा की तरह आकाश में इधर-उधर उड़ने लगे तब जीवन की चेतना जगा उन्होंने प्रेम की परिभाषा की !!

४८

यौवन के फेंके हुए सुमन-शरों की उपेक्षा कर जिस तरह शैल-श्री ने सदियों तक शिव के लिए साधन का शौर्य बहाया उसी तरह उल्लास के बसन्त में रहकर मैं भी तेरी उपासना में कालान्तर कर दूँगी—

जब तक तेरे प्राणों में मेरा प्रवेश न हो जाय तबतक— मेरे श्वास की कोई छृति न होगी, स्पन्दन में कोई सौन्दर्य न होगा, न दृष्टि में अनन्त को जगानेवाला जादू ही। केवल, नाद का अमर-संगीत घड़ियों को स्तब्ध करेगा और मैं ज्वाला-मुखी के झरते हुए अधरों पर आसन लगा तेरा आह्वान करूँगी॥

४६

घनी झाड़ियों के झुरमुट में छिपे हुए मौज के मरुद्यान कभी-कभी खोये हुए शिशु के रुदन के समान प्रभञ्जन की बाँसुरी से प्रकम्पित होते हैं !

प्रगाढ़ अन्धकार छाने के पूर्व झिलमिले प्रकाश से प्रकृति में हास भर जाता है !

प्रतिक्षण प्रकृति में परिवर्तन होता है पर मैं—

शीत और ग्रीष्म में समान जलती हूँ और मेरे त्रास का कोई त्राण मुझे नहीं मिलता !!

५०

प्रथम आलिङ्गन की पहली स्मृति सन-सन करती हुई उसी तरह मेरे नवंगों को फहराती है जैसे भरी हुई वारुणी की जुड़वाँ लहरें प्याले के अधरों को !

समय की पछाड़ें खाये हुए शैल के श्वेत भ्रू पर सौलहों शृंगार से सजी हुई रमणी पर पवन का मोह ठहरा और वह अपनी ही दृष्टि में परास्त हुई—! इसी तरह मेरे योग-स्निग्ध संयम के पट को धीरे से खटखटा कर तू अदृश्य हो गया और अब—उस प्रथम स्पर्श की पहली स्मृति मेरे प्राणों के निर्जीव पिण्ड को प्रतिपल आह्वान करती है !!

५१

निकट आ आ कर दूर जाता है, इसीलिए तेरा आकर्षण असीम हो गया ! तू मुकर,—पर, तेरी रुखाई मेरा रुख न मोड़ेगी,

मेरी आह और आशीर्वाद का अधिकारी केवल तू होगा ! तेरा प्रेम प्राप्त करने के लिए मैं मृत्यु पर्यन्त सतत तुझसे प्रेम करूँगी —!

मेरे शोक से 'सेवन्ती' मुर्झा जायगी, और जिन आहों पर आज तू तरस नहीं खाता और आँसू सूखे पत्तों की तरह झर जाते हैं उनकी कीमत होगी !

जिस घड़ी मेरे दुःख का अन्त होगा उसी घड़ी तेरा चिन्तवन प्रारम्भ होगा !! मेरा विश्वास है, ऐसा कोमल हृदय बिना प्रतिकार पाये नहीं टूट सकता !!

५२

शशि-मुख से निकली हुई रजत-धूप का पहला पूर सागर की धमनियों में रक्त-सञ्चार और पवन की न दिखनेवाली नसों में प्रकम्पन भर वनश्री की अछूती सुगन्ध से उसे मातल बना देता है।

अभ्र की आँख में बना हुआ धूलि का मन्दिर भी ज्योत्सना-रञ्जित हो जीवन की साँस लेता है पर—निशा के सन्नाटे में तेरी जुस्तजू में निकली हुई मेरी धड़कन मुझमें लौट कर नहीं आती॥

५३

गोधूलि के समय क्षितिज के उस पार शंख बजता है।

निशा का मौन भंग करने के लिए मलयज मधुर-मधुर सिसकियों से रोता है। कुमुदिनी की स्वप्न-समाधि खोलने के लिए सूर्य सोने के सहस्र करों द्वारा श्वाँसों की माला भेजता है, पर—जिसकी साध में मैं झुर रही हूँ वह नौलख नेत्र होते हुए भी मेरी ओर नहीं देखता॥

५४

जब पंछियों का मधुर एकान्त सुन्दर कलरव बन्द हो जाय, हरित दूब का उभरा हुआ अँञ्चल हवा की पहली लहर द्वारा आसमानी फूलों की कलियों से भर जाय और अनल-परों वाली कल्पना उर में तूफ़ान उठाये, अनजाना चिर-परिचित प्रतीत हो, विचारों के ओंठ मूक और उनका निर्माण स्पन्दन हीन हो जाय, मन रुठे हुए बच्चे की तरह मौन के झूले पर सो मां की लोरी के स्थान पर सिन्धु के उस पार से आनेवाले संगीत की चिरन्तन सदा में लीन हो जाय तब—मुझे नहीं पर मेरी स्मृति की स्मृतियों को तुझ तक आने देना ताकि वह सोने में तेरी साँसों की सुगन्ध से प्राणों को पालने का विधान कर सके !!

५५

जाने क्यों संसार के प्रत्येक ताने बाने में सौन्दर्य और संगीत को निरन्तर बुननेवाली तेरी धुन सुनती हूँ।

ऐश्वर्य के महलों से भी अधिक स्पष्ट दुःख के दरवाज़े पर अँधेरे की गाढ़ छाया में तेरा आकार देखती हूँ।

राज-पथ-की पराग-रञ्जित सड़कों पर तेरा उपहास और किसी छोटे से गाँव की निस्तल्ल सड़क के किनारे की 'घूरि-ढेर' में तेरी अश्रु-मिश्रित मुस्कान देख आत्म-विभोर हो जाती हूँ।।

५६

जिस तरह वसन्त की हरित अग्नि से प्रत्येक वन-वाटिका जल उठती है और सौन्दर्य की इन्द्र-धनुषी आँखें चैती-गुलाब की बन्द पंखुड़ियों पर ठहरती हैं, उसी तरह कभी न पुराने पड़नेवाले तेरे यौवन के प्रथम स्पर्श ने अव्यक्त कम्पन से मुझे भर दिया है ! मेरी लाज स्वेद के लाल मन के चुनने में व्यस्त है, उसकी आत्मा प्रेम के अज्ञात रहस्य देखती है और मन ही मन मुस्कुरा देती है !!

५७

यदि तू मेरी प्रेरणा न बने तो त्रिभुवन का अनिंद्य सौन्दर्य भी मेरी कल्पना को जगा न सकेगा और अतीत के प्रशस्त ललाट पर स्वर्णाक्षरों में लिखा हुआ मेरे गीतों का अस्फुट इतिहास काल की अलकों में ऐसा अस्त हो जायगा जैसे प्रलय के बादलों में जीवन के सप्तरंगी सूर्य्य का प्रकाश अथवा—अथाह जल राशि में ज्वार से टकराई हुई भ्रमित नौका !!

५८

मानव-मन की मध्य-रात्रि में प्रतीक्षा-पंछी के श्याम परों पर झूलते हुए तेरे प्रथम परिरम्भण की परितृप्ति हो उसके पूर्व ही तेरे हृदय पर अहर्निश फिरनेवाली दोहरी श्वासों की माला का कोमल पर निठुर व्यवधान मेरी मादक तन्मयता तोड़ देता है और तब मैं—

योग-भ्रष्टा तरुण तपस्विनी की तरह उसी सुराम की खोज में भटकती रहती हूँ ॥

५६

मैं जीवन भर अपने आराध्य बदलती ही रही क्योंकि, किसी भी प्रस्तर-प्रतिमा में प्राण फूँक उसे वरदान देने की क्षमता प्रदान न कर सकी !

मेरी विश्रान्ति-स्थतली भी एक न रही क्योंकि तुझे खोजने के लिए मुझे जाने और अजाने अनेक पथ अपनाने पड़े !

मेरी आँखें केवल रुदन के अश्कों से ही तर न हुईं, हँसने के लिए भी वे रोईं उस समय ऐसा प्रतीत हुआ जैसे सान्ध्य-नरगिस शबनम से भर गये है !

६०

मैं तूफ़ान में पैदा हुई और लहरों पर झूली ! कमल-किश्ती पर यौवन चढ़ा तब पलकों में दुःख का करुण रूप छा गया !

अज्ञान द्वीपों के अभिमंत्रित झरोखों से झाँक कर संसार के रहस्यों से विकल हुई और मेरी तपस्विनी व्याधियों को बिना खीज पी जाने वाली मुग्ध-मृत्यु से भय भीत हुई !!

माया की आँच से जले हुए जीवन के परों को बुझाने के विराट प्रयत्न में अनुरक्ति की कमज़ोर सांस उखड़ गई ।

मैं सागर के तूफ़ान में उत्पन्न हुई !!

६१

तीव्र गति से चलती हुई समय की नाड़ी को पकड़ तुझे रोकना चाहती हूँ पर परिष्कृत नियति-तूलिका विविध व्यवधान ले मेरे-तेरे बीच खड़ी हो जाती है और मैं तेरे हृदय में छिपा स्वर्ग नहीं देख पाती।

जीवन की पूरक शक्ति दूर से तेरी विरक्ति का स्तौन सन्देश देती है पर मैं—तुमुल के साथ रोकर भी तेरे निश्चय को अनुरक्ति के गुण से नहीं खींच सकती॥

६२

समय जब सत्य और झूठ का अन्तर समझा देगा तब तुझे ज्ञात होगा कि तू ही मेरा एक और अन्तिम प्रेमी था, तेरे ही सौन्दर्य ने मेरी आत्मा को इस तरह मदहोश किया जिस तरह शराबी के मन को शराब की कल्पना !

काल जब सत्य और असत्य का निराकरण कर देगा तब कदाचित तू समझेगा कि तूने उसी शिला की उपेक्षा की जिसपर बैठे उम्र भर आराधना कर इन्द्र को भय-विह्वल किया !

चिन्तन का पर्दा चीर जब तू स्वयं 'सत्' और 'असत्' का स्पष्टीकरण करेगा तब तू जान लेगा कि मेरी ही आँखों को पढ़ तू ने ज्ञान का अक्षत भण्डार पा लिया है !!

६३

मानव-महासागर के किनारे क्षितिज पर ऊगने वाला वह नक्षत्र होती तो साधक की तरह जाग कर काली रात के अवगुण्ठन में छिपे तेरे चन्द्र-श्वेत कोमल रूप की कल्पना कर क्रूर ग्रहों के कोप से तेरी रक्षा करती, और वन की नीरवता से निकले हुए तेरे निस्तल पथ को चाँदनी का प्रकाश पिला तुझे सुख-सौरभ-स्नात कर देती !!

६४

रोकर प्यार की बात कही थी अब हँसकर उसे इन्कार करता है !

जीवन के छाया-प्रकाश में बैठ उसने मेरे मन का द्वन्द्व पढ़ा ! नभ में खिले बड़े-बड़े बादली फूलों की झाड़ में बैठ चेतना का निर्द्वन्द्व स्खलन देखता रहा पर अब—अवसाद और वेदना से भरे मेरे गीतों पर निर्वेद का प्रस्वेद देख मुकुर गया !!

६५

तंत्री के परोक्ष तारों से बँधकर तू मेरे निकट आया तो क्या आया ? अभिशाप के अश्कों से भीगी हुई मेरी रूह सदैव तन्हाई में शान्ति को कोसती रहेगी और निकट रहते हुए भी मुझे दूसरी का अनुभव होगा, मेरे अरमान उसी तरह मिट जायँगे जैसे अम्बुज-पुट में बँधे हुए भ्रमर के, क्योंकि सूर्य्योदय होने के पूर्व ही स्वर्ग का श्वेत मदोन्मत्त मानव-वन में घूमनेवाला निर्द्वंद्व गज उसे अपने मुँह में दबा लेता है।

किसी तूफ़ानी हवा ने एक दिन मेरा स्पर्श किया, हिमाच्छादित पहाड़ की बैंजनी चोटियाँ भी उससे हिलकर भ्रमन्ति हुईं और वियोग के करुण-गीत का स्रोत उनमें फूट निकला।

बहते हुए पानी से भी वह अधिक तीव्र और जादू-जोर वाला मालूम हुआ।

उसमें एकान्त सौन्दर्य था, जिसकी गहराई में डुबकी लगा कर मानो मैं जी उठी ॥

६७

ए जीव ! गृद्ध की तरह तू भी अपना नीड़ किसी ऊँची चट्टान पर बना ! कोलाहलपूर्ण जन-पदों से दूर बस, क्योंकि वे पाप और घृणा के आवास हैं ! तूफ़ान में जब मानव अपने-अपने घरों में और पक्षी घोंसलों में आश्रय ढूँढ़ते हैं, तब ऊकाब गगन में बादलों के भी ऊपर उठता है और बिना चकाचौंध के सूर्य को स्पष्ट देखता है !!

६८

वेदों ने कहा—तेरा प्यार बिना बरसी हुई ओस-बिन्दु-सा अलभ्य है और उसे प्राप्त करने की घड़ी ब्रह्माण्ड के वक्ष पर छाये हुए इन्द्र-धनुष की शृंखलाओं में बद्ध !

रूठे हुए शिशु के समान मेरा मन तेरे दिव्य रूप की झलक से यौवन के कँटकित पथ पर मचल गया है और मैं तब से विश्रान्तिहीन तुझ तक पहुँचने का पथ खोज रही हूँ !!

६९

उन पहाड़ी-गुफ़ाओं में जाऊँगी जो धूलि और आँधी को अपने हृदय में भरती हैं। अँधेरे के कूल पर बैठ संसार-सिन्धु के अन्तर का गीत सुनूँगी और वह रहस्य जानूँगी जो गुह्य है। भय भरी आवाज़ें मुझे भयभीत न करेंगी, मैं आसानी से उस 'शब्द' की कल्पना कर सकूँगी जो उठते ही अस्त हो गया, उस धुँधले छाया-राज्य में बड़ी से बड़ी दुविधा भूल जाऊँगी, याद रहेंगे— केवल पीले गुलाब-सा चाँद और नीलिमा से भरे बादल जो शबनम से प्रकृति की आँखें तरल कर स्वयं हँसते हैं।।

७०

मेरी प्रेरणा उस एकान्त-शिकारी की तरह मानव-हीन मरुभूमि पर अद्भुत अजानी नियति की सुदूर से आनेवाली निरन्तर वाणी के वक्ष पर फिरती है और डूबते हुए पवन के स्निग्ध अञ्चल में छिप जाती है। दूब की उष्ण आहों में गाती है, तब फूलों के भार से झुकी हुई झाड़ियाँ विहँसती हैं और वह पल्लवों पर बिछे हुए द्रव-बिन्दुओं में तुम्हें खोजती है।

कृष्ण-हरित सुई से पत्तोंवाले देवदारू के वृक्षों की बिखरी प्राणी-शब्द-शून्य छाया में मेरी छोटी-सी पूर्णकुटी है। मध्य-रात्रि के बाद ज्योत्सना-रञ्जित शाखा पर बैठ तेरी वंशी बनकर मैं गाऊँगी।

तेरी आँखें हिमाच्छादित कर्पूर-सी ऊँची नीची पृथ्वी के उस पार शून्य में विलीन होनेवाले तरानों को खोजेंगी और तू आकर मेरा द्वार खटखटायेगा, पर मैं अपनी आहट के अतिरिक्त कुछ भी न सुन सकूँगी और तुझे निराश लौट जाना पड़ेगा॥

७६

दोहरे अन्धकार में भी तेरी आँखें शुक्र तारे की तरह मेरे मानस-क्षितिज पर लुकलुक करती हैं। फिर भी—मेरी मानवीय आत्मा जीवन की निठुराई से करुणार्द्र होती ही रहती है—वह आकाश के अजाने पथ पर कल्पना के बीज बिखेरती है और पुष्प-चयन करती है।

उस राज़ को मैं लिख नहीं पाती। भविष्य के गहन बन की खोज करने की शक्ति भी मुझमें नहीं है और न मेरी प्रतिभा प्रहरी की तरह सतत् जगकर उसकी गुह्यता ही समझ पाती है।

प्राणि मात्र अतीत की अनुभूतियों में उसकी झलक देख लेता है, केवल मैं—उससे महरूम रह अन्धकार में चमकनेवाली तेरी आँखों की 'लुक लुक' ही निरखती रहती हूँ॥

७३

सुमुखि, तुम्हारी भौंहों के प्रति मैंने एक कवित्त रचा,
तुम्हारी नासिका की प्रशंसा में मैंने एक दोहा कहा,
तुम्हारे मुख-कमल के प्रति मैंने एक सोरठे की कल्पना की,
तुम्हारी ग्रीवा के प्रति मैंने एक चौपाई बनाई ;
और जब—मैंने तुम्हारे हृदय का निरीक्षणकर लेखनी उठाई तो शब्दकोष रिक्त था ।

७४

समुद्र की उन नन्हीं-नन्हीं उर्मियों से मेरा हृदय निर्मित हुआ है जो कभी तूफ़ानों के गले लगती हैं और कभी उल्लास और शान्ति से उत्पन्न होनेवाले स्मित-दुःख के भार से प्रकम्पित होती हैं या कभी स्पन्दन-हीन होकर मृत्यु की छाया-सी श्याम नज़र आती हैं।

प्रेम-सूर्य का प्रकाश प्रविष्ट होते ही वह मुखर हो संगीत का सृजन करता है और तब मेघ और सिन्धु की आत्मा मिल जाती है!!

७५

निशा के साये से निरन्तर निकलनेवाली प्रेत-आवाजें, काले ग्रहों का अटूट मौन, और उनमें दूर से जलनेवाला शीतल अनल मुझे भयभीत नहीं करता---मानव-स्वप्नों की आँधी भी मुझमें प्रभञ्जन नहीं लाती, पर यौवन के ज्वार का कम्पित हाथ मेरी आँखों को बन्दकर आशा के जीवन से आंख-मिचौनी खेलता है तब---मैं जगत के ओज से हैरान हो तेरी बाँह ढूँढ़ती हूँ और अपना ही सन्नाटा सुन भयभीत होती हूँ!

७६

कवि-कल्पना से भी तू अधिक हरा भरा और गहरा है, इसीलिए रूप की दुनिया में प्रकृति के साथ मिलकर तू वह देखने लगा जिसकी कल्पना तक मेरे लिए दुश्वार है। नक्षत्र तेरे प्रदीप और त्रिभुवन तेरे मनोरञ्जन का नन्हा-सा ख़याल मात्र।

पर मैं धूलि में खिल वहीं मुरझाऊँगी, जीवन के शिवाले में बाकी न गंध रहेगी, न सूर्य-प्रकाश से पुनः जीवित हो जाने वाला बीज ही। तू अमर है और मैं मरण-शील।

७७

चल, आज पहाड़ियों पर नहीं, मेघों के रथ पर बैठ, कवि-कल्पित संसार की सैर करेंगे।

दोहरे अन्धकार में बिना चिराग़ के घूमनेवाले भाग्य की अदृश्य आवाज़ जो बहती मलय के नाज़ुक परों पर ठहरती है सुनेंगे, और क्षणिक आह्लाद को भूल जाँयगे।

आह से निकलनेवाले वियोग और मिलन का स्वमिल-मिलन देखेंगे, एक दूसरे से मुक्त होने का कल्याणकारी विधान हेरेंगे।

चल, मेघ-यान पर चढ़ उस स्वर्ण-लोक की सैर करेंगे॥

पन-घट पर बैठ कर भी तू मेरा रस-कलश भरने से इन्कार करता है ?

तारों के प्राचीर पर तारुण्य भरे प्रकाश की डोरी पकड़ मैं तेरे आश्वासन पर यहाँ तक आई और अब—झूठी प्रतिष्ठा के निठुर-पञ्जों में फँस तू मुझे लौट जाने को कहता है ?

वर्षा के पहले आनेवाला तूफ़ान,

पृथ्वी और आकाश का कभी न मिटनेवाला अन्तर मिट गया है। धूरि का परिधान पहन वनस्पतियाँ अन्धकार की तरह ही विस्तृत हो गई हैं।

सुगन्ध-प्रेमी सर्पों के मुग्ध जोड़े चन्दन के वृक्ष पर लता के समान लिपटे हैं, तब—

तू पन-घट पर बैठ मेरा रस-कलश भरने से इन्कार करता है!!

७९

उस दिन चाँदनी फूलों से हँस रही थी, उन्होंने पन्ने को गला कर पानी में घोल दिया और मुझे संकेत से बुला जल-विहार के लिए नौका छोड़ दी।

मैं निशा का यौवन पी संगीत की कड़ियाँ खोल रही थी, तब सहसा मेरा अंचल पकड़ वे बोले—

"प्यार करती हो रानी, मुझे ?

"नहीं"·········

"न·········हीं" ? तब—

तुम्हारे पुरुषत्व को; जिसके बिना नारी का जीवन अधूरा है, भारी है, असहाय है, विकल है;

जय, उल्लास और गर्व से उनकी आँखें भर गईं। तब मैं उनके हाथों से डाँड लेकर नौका स्वयं खे चली !!

८०

हिमगिरि से दुःख का जहाज भी तिल भर के सुख-मिलन-सिन्धु में चल सकता है पर मैं——तेरी प्रतिष्ठा को मटमैली करके तेरे स्वप्नों की तीलियों में अपने पर न फँसाऊँगी और न तेरे सौन्दर्य-गगन में निरन्तर उड़नेवाले नयन-खगों को ही अपनी बाहुओं पर उतरने दूँगी, क्योंकि मेरे स्पन्दनों का मूल्य तेरे निकट कुछ भी नहीं !

८१

आकाश और अवनि के बीच मैं अकेली हूँ

हवा की साँस और पानी की गले मिली हुई लहरों के सिवा मुझे कुछ नहीं दिखाई देता !

दिवाकर के आलोक में झाग का आँचल ओढ़ क्षणिक बुदबुदे छोटे बच्चों-से नाचते हैं और संगीत का सृजन करते हैं—जीवन की खुशी उसका प्रकाश हर ज़र्रे में है, पर आकाश और अवनि के बीच रहनेवाली मेरी अकेली आत्मा तेरे वियोग में उसका अनुभव नहीं कर सकती !

८२

मेरे मानस में न आ !

तेरे पक्ष में रमनेवाले अभिलाषा के रंगीन स्वप्न कहीं पथ में बिछे हुए काँटों से छिद न जाँय !

प्रेम के प्रवञ्चना भरे अश्कों को पोछने का व्यर्थ प्रयत्न न कर—जीवन की विडम्बना में फँस कीर्ति पताका पर चढ़े हुए अपने शील-स्निग्ध कर्त्तव्य की उपेक्षा करेगा !

मेरे मानस में मत आ !!

८३

कोयल कूजकूज कर अपना गीत एक सुदूर स्थित नक्षत्र को सुना रही है !

क्या तेरा शिकवा उस तक पहुँचता है ? या व्यर्थ ही अपना कण्ठ बर्बाद कर रही है ?

आज रात तो उनका सौन्दर्य और ओज अद्भुत है,

कोयल कुहुक उठी !

रात और दिन के श्वेत-श्याम मणियों की निरन्तर माला फेरनेवाला यह राज़-भरा जीवन क्या है ?

दारुण तृष्णा की तरंगें उठ-उठ कर निराशा के सिन्धु में लोप होती हैं, वह जीवन है ?

दीनों से चूसे हुए ऐश्वर्य से राज-प्रासादों का निर्माण जीवन है ?

श्रीसम्पन्न होते हुए भी भूख की यन्त्रणा से मरना, रुग्ण बिना औषध और सुपरिचर्य्या के प्राण दें, और नन्हें शिशु दुग्ध के स्थान पर माँ का रक्त चूसें, वह जीवन है ?

दिन-रात कड़ी शीत और कठिन धूप में मेहनत कर भी एक बार पेट भर भोजन न मिले और तारों की छत के नीचे सोना पड़े, वह जीवन है ?

यहाँ सूर्य्य चमकता है, मेघों से जल-वृष्टि होती है और मनुष्य स्वप्न और संस्कृतियाँ रचता है ।

पर यह मरु भूमि है, रात्रि के घने अन्धकार में फ़ौजें कट मरती हैं, रक्तिम घड़ी के युद्ध में शूर अपने आदर्श छोड़ मर कर अमर हो जाते हैं और कायर मैदान से मुँह मोड़ कुत्ते की मौत मरते हैं— !! क्या यही जीवन है ?

मैं अकिञ्चन हूँ, पर तुम्हारी मुझ पर अटूट कृपा है, अतः तुम मुझे दृष्टि-ओझल नहीं करते ।

सुबह जब मैं खेतों पर काम करने जाती हूँ तब श्री-मण्डित बसन्त में मुझे तुम दिखाई पड़ते हो, मैं उस दया-दृष्टि से कृतार्थ हो जाती हूँ ।

दोपहर में गङ्गातट पर गुलाब की झाड़ियों के नीचे जब घड़ी भर के लिए लेटती हूँ, बुलबुल की अलस भरी चह में तुम्हारा ही राग सुनाई पड़ता है और मैं अपना दैन्य-विरह भूल जाती हूँ ।

सन्ध्या के मधुरिम प्रकाश में उस विकट मार्ग से हो जब घर लौटती हूँ तब तारों की छवि में टिमटिमाता हुआ तुम्हारा ओज देख मैं खिल उठती हूँ—

रात को पयाल के बिछौने पर जब मैं सोई रहती हूँ तब तुम्हारे चरणों की छाया मेरे वक्ष पर आँखमिचौनी खेलती है और नींद आ जाने पर तुम्हारे कलित स्वप्न देखती हूँ और यह प्रार्थना करती हूँ कि श्याम ! जब इस जीवन-निशा का अन्त हो, मेरी सब ममताएँ छिन्न हो जायँ तब मेरे नयन अमृत्त्व के ललाम-प्रभात में सीधे तुम्हारे श्री-धाम में खुलें ।।

## ८६

जीवन की एकाकी साध, मैं रूठूँ और श्याम मनायें। यौवन-उनींदी आँखों से शृङ्गार के स्फुरण झड़ें, संगीत श्री से सुमन-सौन्दर्य शर्मिन्दा हो, स्फटिक सुराही की भरी उछलती मदिरा क्षण भर सो जाय, मैं मौन रहूँ और श्याम—मुझे गा-गा कर मनावें !!

जीवन की एकाकी साध !

## ८७

जब प्रियतम बिछुड़ने लगे तब मैंने सजल सरोजों में वेदना भर कर पूछा—'अब कब मिलेंगे ?'

पलकों का मद पलकों में उड़ेल कर बोले—'जब विश्वेश्वर प्रलय की डमरू बजावेंगे, मयूर रो रो कर आकाश-पाताल एक कर देंगे, शून्य विमानों से भर जायगा, और पृथ्वी जलमग्न हो जायगी, तब मैं आऊँगा—और तुम्हें अपने कर यान पर बिठाकर उसी प्रदेश की सैर करूँगा, जहाँ मैं अभी जा रहा हूँ।'

८८

"ओ अन्तः स्थल के अम्भोजासन पर विराजनेवाली आल्होड़ित आत्मा ! कहो तो, तुम कौन हो ? आजन्म से तुम मेरे साथ हो—मेरी जन्म साथिन हो ! क्या तुम अमर हो ?"

आत्मा ने आर्द्र हो कहा—

"अज्ञात !

मैं अमर हूँ—

अनंत हूँ; ईश्वर हूँ !!

केवल आध्यात्मिक लोग ही मुझे जगाकर अन्धकार को प्रकाश पूर्ण कर सकते हैं !! एवम—अभिसंचित मोह जाल के ऊँड़े उदधि को पार कर अभिन्न लोक की ओर गतिमान होते हैं !!"

८९

गीले घास पर सो जब समय की विरलता नष्ट करती हूँ तेरी घटा से मेरा मस्तिष्क भर जाता है, अद्भुत ऊँचे विचारों का स्रोत उमड़ता है, और धुली हुई नीलिमा में तारे निस्तेज होते हैं !

तेरा विचार पुष्ट हो तब तक कल्पना के पर जल उठते हैं और मैं उसे दूर रखती हूँ । ऐ मेरे स्वप्ननिर्माता ! तेरी छटा कितनी प्यारी और विचित्र है !!

६०

विश्वपति फेरी देकर मेरे नव-उपवन में पधारे।

प्रियतम के हाथ में वंशी थी और मेरे हाथ में वीणा! चाँदी के सरोवर में तरणी में हम बैठे हुये थे और मलार से मयंक को देखकर अधरामृत की कल्पना कर रहे थे।

थोड़ी देर तक वे छिपे रहे, परन्तु हमारी मधुरागिनी और मलारों का बिहँसना सुनकर वे न रह सके!

माँझी का रूप बनाकर आये और तरणी में बैठ गये!

सहसा मेरी बीन बिगड़ी। वे सुधारने के मिस वहीं चले गये। पतवार योंही पड़ी है और नैया जल के बुदबुदों पर आप ही आप चल रही है।

इस निस्तब्ध वारिधि में आज सदियों से प्रियतम और मैं रहते हैं। अब तक न तो वह मांझी ही आये और न वह बीन ही कोई लाया!

वे मेरी ओर देखते हैं और मैं उनकी ओर।

## ६१

जब कभी तू मेरी ओर देखता है तेरी नयन-रश्मियों से मैं उसी तरह रञ्जित हो जाती हूँ जैसे सूर्य्य के पीले आलोक से पृथ्वी-कौस्तुभ और तब—जग मुझे तू समझ लेने की भूल करता है !

पर जब सन्ध्या होते ही तू उस स्वप्निल परिरानी के पास पहुँच सौन्दर्य गाता है तब—मैं अपने यौवन के "हरे दागों" को आँचल उठाकर देखती हूँ और—संसार की भूल पर सिर धुनती हूँ !

# १२

प्रभाती चाँद के क्षीण प्रकाश में मेरी पलकों से अधर छुआ जब अपने स्वर्गिक-कक्ष से मुझे भगा देता है और स्फटिक झरोखे में खड़ा रह मेरी मादक स्वप्न-उनींदी चाल को अपलक नहीं देखता तब मैं समझती हूँ तूने मेरी उपेक्षा की। प्रेम का हृदय अज्ञात-निराशा के तूफ़ान से भर जाता है और जीवन के युग शोक के समुद्र-तट पर उद्देश्य-हीन फिरते हैं। तब मैं तेरे पास नहीं आती और तू—

मेरी ओर नहीं देखता तब मैं समझती हूँ तूने मेरी उपेक्षा की !!

## ९३

शबनम-गीली हरी घास पर गिरता हुआ, प्रकृति में छिपी हुई पत्तियों में प्रकम्पन करनेवाले भविष्य के अकल्पित परों को किसने देखा ?

वन की प्रशान्त आवाज़ से ऊँचे उठकर वे बच्चे की नींद के नन्हें सपनों में डूब जाते हैं !

नियतिराज-प्रासादों और राज-मुकुटों की पर्वाह नहीं करती और न मानव के उत्कर्ष से ही सम्बन्ध रखती है, वह तो आत्मा पर अपना साँवरा साया डालती है जो पहाड़-से दुःख और कतरे-सा सुख समान भाव से वहन करती है और गुपचुप रोती है !!

९४

श्याम, तुम से मिलकर मैं लौटी तो मग में विविध राज़ खुले ? सृष्टि मिटी पर 'सत्य' ज्यों का त्यों नज़र आया; उसका ओज भी आत्मा की तरह अमर था। शरीर नष्ट हो गया; किन्तु—वह अभ्र के रंग में, झींगुर के माधवी-कण्ठ में मन्दार की महक में ज्यों का त्यों छिपा, फिर भी 'स्पष्ट' था !

९५

जीवन और मृत्यु में समान सौन्दर्य है !

फूलों के सुगन्धित परिधान पहने हुए 'शिव' की आत्मा में मैंने सौन्दर्य की खोज करने के लिए प्रवेश किया; घास में छिपे हुए नन्हें घोंसलों के आसपास तितलियाँ मँडराने लगीं, सूर्य-पुष्प-सी, शिशुमन के उल्लास-सी, वे पँख फड़फड़ाती रहीं और जो मैंने देखा उसे प्रेम-पगे मानवों पर प्रकट कर दिया—उन्हें प्रत्येक कृति में परमात्मा का नूर दिखाई देने लगा तब उस रहस्य का राज़ मैंने यों कह स्पष्ट किया, मानव जीवन और मृत्यु में समान सौन्दर्य देखना सीखा !!

९६

काश, सौन्दर्य शाश्वत होता !

विधि की यह कैसी विडम्बना है कि मृत्यु उस पर अपनी छाया सदैव डाले रहती है ? हाड़ मांस के पुतले न होकर यदि तुम काञ्चन की अँगूठी होते तो अंगुली दीप्त हो जाती, काश्मीर के नीलम होते तो मेरे कर्ण-फूलों की कान्ति बढ़ाते ।

और तब——प्रेम, प्रेम का प्रतिफल न चाहता और मौन हृदय की भूलभुलैया के मार्ग न शोधता ।

वह अनन्त यात्रा का पथिक बनता जब की वह अमोल रत्न मेरे हाथ में रहता मौनवाञ्छा की मौन पूर्णता में !! लक्ष्य अप्राप्य न होता और जीव के यात्रा करने पर भी वृत्तियाँ न भटकतीं यदि सौन्दर्य शाश्वत होता !!

९७

मैंने तुम्हारा संगीत सुना और अपने जीवन की पोथी के पन्ने समेट लिये——अब उन्हें कभी न लौटूंगी क्योंकि ग़म की मूर्छित घड़ियों में निकला हुआ मैंने तुम्हारा सुहाग-संगीत सुना है।

९८

मेरे सुप्त और जाग्रत सपनों को आवेष्टित करनेवाला वह कौन ? उसकी खोज में जीवन का प्रभात अपने आप ही हो गया। वह संगीत सुन सहस्रों वर्षों तक मैं झूमती रही, प्रत्येक बार जीवन पाकर उसकी परछाई का पीछा किया, पथ में कई राज़ खुलते रहे, हरित वृक्षों की आत्मा ने चुपचुप मेरे कानों में कुछ कहा —

शशि-दीप के झिमझिमे प्रकाश में गुलों की रुह पत्तों पर थिरकने लगी—मानवी मधुर भाषा की तरह प्रकृति की प्रत्येक बात स्पष्ट हो गई—

जाने कहाँ से वह मेरे लिए आया, पर विरले ही उसे देख पाये—मेरे जीवन के शोक-स्मित घहन हरे, दाहभरे पाला, पानी और ताप खाये हुए जंगल से वह फरफराते हुए अदृश्य हो गया—उस उड़ान का अर्थ न कोई देख सका न समझ ही सका !

## ९९

जीवन का आदि नहीं; मैं तो उसका अन्त हूँ ।

इन्द्र-धनुष की रंगीन झाँई नहीं; मैं तो मेघों की घनी काली छाया हूँ ;

यौवन की माधुरी नहीं; मैं तो उसका विष-विकार हूँ; प्रेमका प्रकाश नहीं; मैं तो भादों की भरी रात हूँ ;

सुहाग की बिन्दी नहीं, मैं तो वैधव्य का कोरा काजल हूँ ;

जीवन का आदि नहीं, मैं तो उसका अन्त हूँ ।।

१००

प्रेम-सूर्य के अस्त होने पर मेरा मन-मधुकर रजनी के कोष में बन्द हो गया है और प्राणों से दीपक राग प्रकट कर अब मैं जीवन का समा न बाँध सकूँगी।

उच्छ्‌वासों की आँधी और आँसुओं का तुषार मुझे विराम न लेने देंगे।

मैं वेणी का शृंगार न करूँगी, आशा का कम्पन न सहूँगी, मिलन का भार उठाऊँगी, आसव की प्याली उफनने दूँगी, माधुर्य का परिमित न बिखेरूँगी, और शतशत प्रयत्न करने पर भी दीपक-राग गा जीवन का समा न बाँध सकूँगी, क्योंकि मेरा मन-मधुकर रजनी के कोष में क़ैद हो गया है।

१०१

मिलन की मादक मदिरा के अभाव में निशा का नशा उतर गया है, और प्रतीक्षा की निरन्तर प्रहारों ने उसके उर में गम्भीर घाव कर दिया है। यौवन की रङ्गरलियों से विस्मृत उसके अधर सूख गए हैं, और सूनेपन के भार से उसके हृदय की धड़कन बंद हो गई है; प्रेम सञ्जीवनी ही इस मरीजेइश्क की परिचर्या कर सकती है।

"मुझे जाना पड़ेगा !"

"कहाँ ?"

"इन रंग-रंगीली, मदमाती, उत्साह-भरी विश्व की युद्ध-लहरों के उस पार !"

"क्यों ?"

"जीवन के अल्हड़ खिलाड़ी की खोज करते !"

"कदाचित वह ढूँढ़ने से न मिले तब ?"

"चुपचाप बैठने से ?"

'नहीं !"—

'स्वयं खो जाने से ? तुम यहीं रहो—— वही तुम्हें खोज लेगा !"

१०३

तुम्हारी आँखों में स्नेह नहीं है और मेरा यौवन अन्धकार में बुझ गया है;

तुम्हारे जीवन में सुख नहीं है, और मेरी कहानी तूफ़ान से भर गई है ;

तुम्हारे शासन में आतंक नहीं है, और मेरा प्रेम-बंधन-मुक्त हो चला है !

१०४

फूल खिला है तभी तक मानस-मन्दिर के द्वार खोल दो, फिर अस्त-व्यस्त पंखुड़ियाँ लेकर मुझे तुम तक आने का साहस न होगा ।

बसन्त है तभी तक कोकिल की रागिनी क्यों नहीं सुनते ? असमय में गाकर वह तुम्हारे आकर्षण को मोहित कैसे करेगी ?

परों में जीवन है तभी तक परिन्दे को पकड़ लो । असहाय हो जाने पर वह तुम्हारा मनोरंजन हरगिज़ न कर सकेगा ;

यौवन के उषा-काल में ही शौर्य बहा लेने दो, फिर रीती आँखों से कौनसा आब चुआकर तुम्हारी जरा हरूँगी ?

फूल खिला है, तभी तक मानस-मंदिर के द्वार खोल दो !!

१०५

"उस निर्जन वन में वह क्या कर रही है ?" मेरे प्रेमी ने उस स्वच्छन्द शुक से पूछा, जो डाली-डाली उड़ रहा था।

एक मृदुल टहनी पर ठहरकर उसने पढ़ा—"श्वेत वस्त्र पहिन कर वह सरिता के पार खड़ी रहती है। उसके केश कलाप से ज्योति की बूंदें झरने के रूप में फूटतीं और सरिता का आलिङ्गन करती हैं और वह उस शुभ्र और नील शीशे में तुम्हारा प्रतिबिंब निरख हँसती भी है और रोती भी। कल-कल निनाद उसी के साथ अट्टहास कर उठता है; और कमल तरणी मोतियों से भर जाती है।" मैंने इसे सुना और बार-बार सुना।

१०६

मिलन के चिर-अभाव ने निशा का नशा उतार दिया है और प्रतीक्षा के निरन्तर प्रहारों से आलिंगन के अंग-प्रत्यंग अचेत हो चले हैं ;

यौवन की रंगरलियों से विस्मृति अधर काँप रहे हैं; जीवन का सूनापन अब असह्य हो चला है और मिलन के चिर-अभाव ने निशा का नशा उतार दिया है !!

१०७

निंदक, यदि निन्दा के अंगराज के बिना तेरे कोमल प्राणों का दहकता ज्वर शान्त न होता हो—स्वनिंदा के शीतल चन्दन से ही अपना अंग चर्चित कर तेरे क्लान्त चित्त को जरूर राहत मिलेगी !!